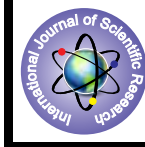


प्राचीन काल में योग का अभिप्राय Prachin Kaal me Yog ka Abhipraya

Ramesh Singh

Associate Professor in Physical Education, Rashtriya Sanskrit Sansthan (D.U.) New Delhi



Physical Education

KEYWORDS : Yoga

ABSTRACT

प्राचीन साहित्य में उपलब्ध शिक्षा प्रणाली पर दृष्टिदोष करने से प्राचीन काल की प्राचीन शारीरिक शिक्षा संस्कृति, विज्ञान और कला का सुव्यवस्थित तथा सुनियोजित रूप से सामने आता है। शिक्षा पाठ्यक्रम को देखने से स्वास्थ्य, शारीरिक दक्षता और मनोरंजन का संयुक्त रूप दिखाई देता है। उस समय आयुर्वेद, धनुर्वेद और गन्धर्ववेद, जो पाठ्यक्रम में सम्मिलित थे, इन सभी का अध्ययन करने पर स्वास्थ्य, बल संवर्धन, शारीरिक दक्षता तथा मनोरंजन का ज्ञान होता है। इन तीनों उपवेदों के अतिरिक्त योगाभ्यास, ब्रह्मवैवर्त के नियम तथा गीता के कर्मरत रहने के वैज्ञानिक व दार्शनिक सिद्धान्तों ने व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को प्राप्त करने में तथा नैतिक और आध्यात्मिक विकास प्राप्त करने में महान योगदान दिया है। शरीर, मन और आत्मा के दर्शन से भली-भाँति परिचित हों जायें के पश्चात् तथा जीवन में स्वास्थ्य, बल और मनोरंजन का दर्शन प्राप्त कर लेने के बाद अब हमें प्राचीन साहित्य में उपलब्ध विभिन्न प्रकार की योग का भी दर्शन प्राप्त होता है। प्राचीन भारत में योग के अन्तर्गत शरीर, मन और आत्मा इन तीनों को सम्मिलित किया गया था ताकि व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो सके। शारीरिक धरातल पर देखा जाए तो जो व्यक्ति कर्म में विश्वास रखते हुए कर्म करते चला जाए वह 'योगी' है। अपने जीवन में कर्म को स्थान देने वाला योगी व्यक्तियों में श्रेष्ठ होता है। कर्म के साथ-साथ जिनकी स्मृति परमात्मा में होती है वे योगियों में 'परमश्रेष्ठ योगी' समझे जाते हैं। जो योगी मानसिकरूपेण विचलित नहीं होता वह काम, क्रोध इत्यादि संवेगों पर विजय प्राप्त करनेवाला होता है। इस प्रकार शरीर, मन और आत्मा के धरातल पर जो व्यक्ति परिपक्व है वही योगी समझा गया है। योग यह शब्द 'युज' इस धातु से लिया गया है इसलिए इसका अर्थ जोड़, एकत्रीकरण, संगति है। गीता के अनुसार- "आत्मा में स्थित होकर सहज ही परमात्मा से मन को जोड़ना तथा परमात्मा से संस्पर्श करके आंतरिक सुख व अन्त आनंद में स्थित होना 'योग' है।" दरअसल 'योग' मन पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया है। इस सम्बन्ध में नागेन्द्र का मत है- "Yoga is that systematic conscious process which can compress the process of man's growth greatly." शरीर और मन की स्थिरता से व्यक्ति योग की ओर अग्रसर होता है। इस योग में व्यक्ति प्रमोदरहित हो जाता है। मन को संयम में रखकर कर्म करने से योग प्रारम्भ होता है। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के संयोग का नाम योग है। योग व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। गीता में दर्शाया गया योग विकासोन्मुख, व्यापक और बहुउद्देशीय स्वरूप का है। योग से व्यक्ति अपने इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है, कार्यक्षम बन सकता है तथा शारीरिक और मानसिक दक्षता को प्राप्त कर शांतिप्रिय हो सकता है। योग प्राचीन काल में शांति, दीर्घायु व आरोग्य प्रदान करने वाला था जिसका लाभ प्राचीन भ. भारतीय उठाया करते थे। वैसे तो प्राचीन साहित्यों का प्रमुख ग्रन्थ 'गीता' यह योग दर्शन का महान ग्रन्थ है जिसमें सभी अध्याय विभिन्न विषयों पर योग दर्शन की गहनतम विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं, फिर भी शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से गीता में प्रतिपादित योग के प्रमुखतः तीन प्रकार दूगोचर होते हैं- १) ज्ञान योग, २) कर्म योग, ३) ध्यान योग। इस प्रकार गीता और महाभारत में दर्शाए गये योग में हमें शरीर, मन और इन्द्रियों के द्वारा होनेवाली क्रियाओं में एकरूपता का दर्शन उपलब्ध होता है। शारीरिक शिक्षा के दृष्टिकोण से यदि विचार किया जाए तो इन योग की क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति का स्वस्थ विकास होते दिखाई देता है। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास में इन योग क्रियाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इसी प्रकार गीता और महाभारत में कई प्रकार के योग की मीमांसा है जैसे-सांख्य योग, कर्म योग, सन्यास योग, ज्ञान-विज्ञान योग, ब्रह्म योग, भक्ति योग व ध्यान योग आदि, इनमें शरीर और मन को संतुलित रखने के दृष्टिकोण से ध्यान का महत्व अधिक है। योग का एक महत्वपूर्ण नियम शरीर के बाहरी और आंतरिक शुद्धि और आत्मतुष्टि है। बाहरी शुद्धि में शरीर की स्वच्छता, इन्द्रियों पर नियंत्रण, उत्तम कर्मों का आचरण, स्वधर्म का पालन, अहिंसा अर्थात् मन, वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न देना, आदि सम्मिलित होते हैं। आन्तरिक शुद्धि का अर्थ है छल, कपट, राग, द्वेष, क्रोध, मोह, अहंकार, शोक इत्यादि से मुक्त रहना। तथा आत्मतुष्टि का अर्थ सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहते हुए कर्म करना। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन साहित्यों में उपलब्ध योग से सम्बन्धित दार्शनिक अभिव्यक्ति यह जीवन की उत्तम और आदर्श पराकाष्ठा है। प्राचीन भारतीयों

प्राचीन भारत में योग के अन्तर्गत शरीर, मन और आत्मा इन तीनों को सम्मिलित किया गया था ताकि व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आत्मिक विकास हो सके। शारीरिक धरातल पर देखा जाए तो जो व्यक्ति कर्म में विश्वास रखते हुए कर्म करते चला जाए वह 'योगी' है। अपने जीवन में कर्म को स्थान देने वाला योगी व्यक्तियों में श्रेष्ठ होता है। कर्म के साथ-साथ जिनकी स्मृति परमात्मा में होती है वे योगियों में 'परमश्रेष्ठ योगी' समझे जाते हैं। जो योगी मानसिकरूपेण विचलित नहीं होता वह काम, क्रोध इत्यादि संवेगों पर विजय प्राप्त करनेवाला होता है। इस प्रकार शरीर, मन और आत्मा के धरातल पर जो व्यक्ति परिपक्व है वही योगी समझा गया है।

गीता में योगी के निम्नलिखित लक्षण बताये गये हैं :-

१. योगी को इन्द्रियों के विषय में राग और द्वेष नहीं होता है।
२. उसकी कोई कामना नहीं होती है।
३. वह बाहर और भीतर से शुद्ध होता है।
४. वह शुभ (सफलता) और अशुभ (असफलता) में समान होता है।
५. वह शत्रु-मित्र, सुख-दुःख तथा सदी-गर्मी में समान भाव वाला होता है।
६. वह आत्म-संतुष्ट होता है।
७. वह कर्म फल का त्यागी होता है। वह लोकहित के लिए कर्म करता है।
८. वह शांति प्रिय होता है।
९. वह विकार रहित होता है।
१०. वह शरीर और मन को नियंत्रण में रखने वाला होता है।

योग यह शब्द 'युज' इस धातु से लिया गया है इसलिए इसका अर्थ जोड़, एकत्रीकरण, संगति है। गीता के अनुसार- "आत्मा में स्थित होकर सहज ही परमात्मा से मन को जोड़ना तथा परमात्मा से संस्पर्श करके आंतरिक सुख व अन्त आनंद में स्थित होना 'योग' है।" दरअसल 'योग' मन पर नियंत्रण रखने की प्रक्रिया है। इस सम्बन्ध में नागेन्द्र का मत है- "Yoga is that systematic conscious process which can compress the process of man's growth greatly."

शरीर और मन की स्थिरता से व्यक्ति योग की ओर अग्रसर होता है। इस योग में व्यक्ति प्रमोदरहित हो जाता है। मन को संयम में रखकर कर्म करने से योग प्रारम्भ होता है। शरीर, मन और आत्मा इन तीनों के संयोग का नाम योग है।

गीता में कृष्ण ने योग दर्शन को अति-प्राचीन दर्शाया है। साथ ही इसको एक उत्तम तथा मर्म का विषय घोषित किया है। इस सम्बन्ध में आधुनिक विचारकों का भी यही मत है - "The practices were infect immensely old Concrete material relics of the Indus civilization like stone -statues, and pictures depicted

on the 'relics' unmistakably indicate the yoga practices were prevalent in the country as early as the third millennium B. C." योग यह प्राचीन भारतीयों के मोक्ष प्राप्ति का साधन बन गया था। वेदों व उपनिषदों में भी योग दर्शन को आत्म तत्व का साक्षात्कार बताया है। यद्यपि प्राचीन कृष्ण साहित्य में योग को पूर्णतः आध्यात्मिक धरातल पर अवतरित किया है, फिर भी योग द्वारा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के महत्व को वंचित नहीं किया गया। बल्कि शारीरिक क्रियाओं के क्षेत्र में योग के महत्व को सुदृढ़ता के साथ प्रतिपादित किया गया। कृष्ण ने योग की शिक्षा अर्जुन को वहां दी जहां शारीरिक एवं मानसिक दृष्टिकोण से शक्तिशाली और रणकुशल योद्धागण उपस्थित थे। अर्जुन यद्यपि एक योद्धा था, लेकिन अज्ञान व मोहवश कार्यों की भाँति युद्ध मैदान पर धनुष छोड़कर बैठ गया था। उसकी इस कायरता और नपुंसकता को नष्ट करने के लिए कृष्ण ने अर्जुन को कई प्रकार की योग शिक्षा प्रदान की जिसमें कर्म योग प्रधान विषय था। इससे सिद्ध होता है कि योग शिक्षा से व्यक्ति सक्रिय, कर्तव्यपरायण, संतुलित और ज्ञानी बनता है। योग साधना से मन को संतुलित रखने में सहायता प्राप्त होती है तथा समत्व बुद्धि को जन्म मिलता है। इस समत्व बुद्धि के फलस्वरूप किसी भी प्रतिकूल व संकटमयी परिस्थिति में व्यक्ति स्थिर रह सकता है। कोई योद्धा भी हो सकता है और साथ ही साधु योगी भी, यह गीता जैसे योगशास्त्र का महान रहस्य है। यदि कृष्ण अर्जुन को योग की शिक्षा नहीं देते तो अर्जुन अपने कर्तव्य से तथा अपनी शारीरिक संक्रियता और मानसिक स्थिरता से विमुख हो जाता। अतः स्पष्ट है कि कृष्ण का योग दर्शन सम्पूर्ण मानवी जाति के लिए जीवन कर्तव्य का संदेश है। शायद ही विश्व के अन्य प्राचीन साहित्य में योग शिक्षा का ऐसा महान दर्शन दूगोचर होता है।

योग व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायक होता है। गीता में दर्शाया गया योग विकासोन्मुख, व्यापक और बहुउद्देशीय स्वरूप का है। योग से व्यक्ति अपने इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित कर सकता है, कार्यक्षम बन सकता है तथा शारीरिक और मानसिक दक्षता को प्राप्त कर शांतिप्रिय हो सकता है। योग प्राचीन काल में शांति, दीर्घायु व आरोग्य प्रदान करने वाला था जिसका लाभ प्राचीन भारतीय उठाया करते थे।

प्राचीन काल में योग के प्रकार

वैसे तो प्राचीन साहित्यों का प्रमुख ग्रन्थ 'गीता' यह योग दर्शन का महान ग्रन्थ है जिसमें सभी अध्याय विभिन्न विषयों पर योग दर्शन की गहनतम विचारधारा को प्रस्तुत करते हैं, फिर भी शारीरिक शिक्षा की दृष्टि से गीता में प्रतिपादित योग के प्रमुखतः तीन प्रकार दूगोचर होते हैं- १) ज्ञान योग, २) कर्म योग, ३) ध्यान योग।

१) ज्ञान योग :- मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्त्तापन के अभिमान से रहित होकर एकीभाव से स्थित रहने का नाम "ज्ञान योग" है। यह योग मनुष्य में सतकता का विस्तार करता है। इसी को सन्यास व सांख्य योग इत्यादि नाम दिए गये हैं। ज्ञान

पांतांजलि योग सूत्र में आठ पद्धतियों का उल्लेख मिलता है। वन पर्व में भी योग के निम्नलिखित आठ अंग दर्शाये हैं -

१. यम
२. नियम
३. आसन
४. प्राणायाम
५. प्रत्याहार
६. धारणा
७. ध्यान
८. समाधि

प्राचीन काल में योग के आधारभूत नियम

- (9) इन्द्रिय निग्रह
इन्द्रिय निग्रह का आशय है इन्द्रियों को नियंत्रित करना जिससे मन की चंचलता समाप्त होती है। और मन एकाग्र स्थिति को ग्रहण करता है तथा इससे बुद्धि भी स्थिर होती है। यदि इन्द्रिय निग्रह-नहीं किया तो मन विचलित होकर विवेक समाप्त हो जाता है। यह नियंत्रण 'प्राणायाम' नामक आंतरिक क्रिया से किया जाता है। मन, बौद्धि और शरीर ये तीनों एक-दूसरे के पूरक हैं ताँी इन तीनों का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मन को नियंत्रित अस्थता में विवेक जागृत होता है, बुद्धि स्थिर होकर योग्य निर्णय ले सकती है तथा इसके परिणाम स्वरूप शरीर का संवांलन योग्य रीति से किया जा सकता है।

- (२) ब्रह्मचर्य
योग का दूसरा महत्वपूर्ण नियम ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना है। यद्यपि प्राचीन भारत के साहित्य में ब्रह्मचर्य में शरीर की शुद्धि, मन की शुद्धि व इन्द्रियों पर नियंत्रण स्थापित करने का अभिप्राय अंतर्भूत है, लेकिन गीता में ब्रह्मचर्य को मुख्य रूप से 'काम' नामक विकारी वृत्ति से मुक्त रहने का आशय व्यक्त किया है। काम यह आसुरी का लक्षण है और आसुरी वृत्ति में ब्रह्मचर्य खो जाता है। काम का कम के द्वारा शारीरिक और मानसिक क्षय होता है, साथ ही वह आत्मिक मार्ग में बाधा उत्पन्न करता है, इसलिए यह मनुष्य का महा शत्रु है जिसका ज्ञान रूपी तलाव से हनन होना चाहिए।

(२) सात्विक और संतुलित आहार तथा विश्राम का सुवर्ण नियम
अन्न का शरीर और मन दोनों पर प्रभाव पड़ता है। योग में शारीरिक और मानसिक शुद्धि का महत्व है, अतः ऐसा भोजन लेना चाहिए जिसमें मनुष्य की इन्द्रियाँ उग्र स्वरूप की न हो तथा उसका मन शंत बना रहे। ऐसा आहार ग्रहण करना चाहिए जो उससे सुख हो। सूक्ष्म योगी पूर्णतः स्वभावा से सात्विक होता है। इसलिए उसने सात्विक भोजन लेना चाहिए। ऐसा आहार व्यक्तित्व में बलवर्द्धक और आरोग्यवर्द्धक होता है। जिससे मन की एकग्रता सिद्ध होती है तथा वह अपने कर्तव्य को दक्षतापूर्वक कर सकता है।

- (४) बाहरी व आंतरिक शुद्धि और आत्मतुष्टि
योग का एक महत्त्वपूर्ण विद्यम शरीर के बाहरी और आंतरिक शुद्धि^३ और आत्मतुष्टि हैं। बाहरी शुद्धि में शरीर की स्वच्छता, नियंत्रण पर नियंत्रण, उत्तम कर्मा का आचरण, स्थिरता का पालन, अहिंसा अर्थात् मन, वाणी और शरीर से किसी को कष्ट न देना, आदि सम्मिलित होते हैं। आन्तरिक शुद्धि का अर्थ है कल, कष्ट, राग, द्वेष, क्रोध, मोह, अहंकार, शोक इत्यादि से मुक्त रहना^४ तथा आत्मतुष्टि का अर्थ सभी परिस्थितियों में संतुष्ट रहने का एक कर्म।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन साहित्यों में उपलब्ध योग से समन्वित दार्शनिक अभिव्यक्ति यह जीवन की उच्चतम और आदर्श पराकाष्ठा है। प्राचीन भारतीयों को जीवन के समस्त अंगों को स्वस्थ एवं विकसित अवस्था में रखने के लिए योग योग दर्शन अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ होगा।

१. मूल ग्रन्थ अर्थशास्त्र (कौटिल्य) संपा. आर. शामशास्त्री मैसूर, १९१९ व कुमार सम्भव (कालिदास) व्याख्याकार : कन्हैयालाल जोशी वाराणसी : चौखम्भा ओरियन्टलकार १९७८ निर्णय सागरे पर्व, बम्बई, १९२७ व दादा बोध (समर्थ रामदास) पुणे, समर्थ रामदास संशोधन संस्था, १९७८ व पातंजलियोगसूत्रम् कार : अमलधारी सिंह वाराणसी : भारतीय विद्या प्रकाशन, १९६९ व ब्रह्मदान्यकोपनिषद् गीता प्रेस, गोरखपुर व (सनुवाद शंकराचार्यसहित) व महाभारत से षष्ठ खण्ड तक हिन्दी अनुवाद सहित) व युजुर्वेद संपा. श्रीराम शर्मा बूढादासा कुतुब, (देवनागरी) बरेली, संस्कृति संस्थान, १९८४ व ऋग्वेद (सहित एक से बार) दनगर) बरेली, संस्कृति संस्थान, व विष्णु पुराण अनुवाद - मुनिलाल गुप्त व श्रीमद्भागवत गीता गीता प्रेस, गोरखपुर व २. आधुनिक ग्रन्थ सूची व हिन्दी व जल एवं संस्कृति (रूपा : पुस्तक भवन, १९८०) व कूल पृष्ठ २५६ व तिलक, बाल गंगाधर श्रीमद्भागवतगीता रहस्य (मराठी) वीथी आवृत्ति तिलक रामनरु १९३२ कूल पृष्ठ ८४४ व ब्रह्मकुमार जगदीशचन्द्र महाभारत और गीता का सच्चा स्वरूप और सार (माउंट आबू : ब्रह्मकुमारी ईश्वरी विश्वविद्यालय, पांडव गीर्वाण भारत का सामाजिक इतिहास (पटना : बिहार हिन्दी व ग्रन्थ अकादमी, १९७४, कूल पृष्ठ ७२४ व अंग्रेजी व इपान्तोर चप्पानप द्दकपंन् ब्रसजननम नजनं रु द्द" दोतापन च्छोना दीर्कतत १९८५द्द व बैपार य श्रवेमरी ब्वाजतपडनपपदवे वा द्दसंनव जव जैननहीज वद वीलोपवंस मकनबंनपदवद्भंमंसी दीक जंपवदवद्द छम्लुत्ता न्दपअमेतेपजलव १९८५द्द व ज्ञानकोश व जोशी, प्रहलाद नरहर, संपा., आदर्श मराठी शब्द कोश (पुणे :मराठवाडा बुक कंपनी, १९७०) वीथी संस्कृति कोश. (मराठी) आठवां खण्ड (पुणे व व भारतीय संस्कृति कोश मंडल, १९७४)